समाज व विज्ञान के बीच सेतु बने साहित्य

जयंत विष्णु नार्लीकर, *वैज्ञानिक और कथाकार*

इक्कीसवीं सदी का आरंभ मेरे विचार से 1 जनवरी 2001 से होगा. यदि हम बीसवीं सदी पर विहंगम दृष्टि डालें तो एक बात हमें प्रभावित करती है. मानव के जीवन स्तर में जितना परिवर्तन इन सौ वर्षों में हुआ उतना उसके पहले के पूरे इतिहास में नहीं हुआ. यह विज्ञान की बदौलत संभव हो सका... क्योंकि विज्ञान और विज्ञानजनित तकनीक का विकास लगातार बढ़ती गति से होता रहा है और आगे भी होता रहेगा. क्या 19वीं सदी के अंतिम वर्ष में कोई यह अनुमान लगा सकता था कि अगले सौ वर्षों में मानव चंद्रमा पर जा पहुंचेगा, अति शक्तिशाली अस्त्रों को परमाणु के उदर में छिपी ऊर्जा से चालित करेगा, कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी अनुसंधान कर सकेगा...और कंप्यूटर क्षेत्र में कल्पनातीत वेग से आगे बढ़ेगा? हम दैनंदिन जिन वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं उन पर नज़र डालें तो पाएंगे कि उनमें से अधिकांश वस्तुएं इसी सदी में बनी हैं.

सो, वैज्ञानिक तरक्की इसी गति से होती रही तो 21वीं सदी के मानव जीवन की स्थितियों में कितना अंतर आएगा, इस प्रश्न पर अनेक समाजशास्त्रियों और वैज्ञानिकों ने विचार मंथन किया है. भविष्यवेधी तर्कों से कई ग्रंथ भर चुके हैं. पर यहां हम साहित्य, विशेषकर हिंदी साहित्य के भविष्य को देखना चाहते हैं. क्या साहित्य का रूप भी कालानुसार बदलेगा? बदलते माहौल में क्या हिंदी साहित्य के अस्तित्व को ही खतरा है? टिकने, पनपने के लिए साहित्य को कौन-सी सावधानियां बरतनी होंगी?

पहले यह देखें कि इस कंप्यूटर युग में लिखने-पढ़ने की कलाओं की क्या हालत हो सकती है. पिछले दशक में मैंने जो लेख, पुस्तकें आदि अंग्रेजी में लिखी उनमें कंप्यूटर पर टंकित लेखन की मात्रा बढ़ती गई है. आज का अंग्रेजी सॉफ्टवेयर इतना इस्तेमाल-सुलभ हो गया है कि हाथ से लिखने के बजाय टंकित करना अधिक आसान लगता है (इसमें गणित के जटिल समीकरण भी समाविष्ट हैं). इस पद्धति में लाभ यह है कि आगे-पीछे यदि पांडुलिपि में संशोधन करना पड़े तो वह बड़ी सहजता से किया जा सकता है. इस प्रकार 'लिखित' लेख की कंप्यूटर फाइल इलेक्ट्रॉनिक डाक के माध्यम से संसार के कोने-कोने तक चंद पलों में भेजी जा सकती है. आगे चलकर इस प्रणाली में भी निश्चित ही बदलाव आएंगे. आज मैं भले ही कलम से लिखने की कला भूल जाऊं पर अक्षरों की पहचान तो करता हूं, क्योंकि कंप्यूटर 'की-बोर्ड' पर मुझे उन्हें टंकित करना पड़ता है. कुछ ही सालों में आवाज़ की पहचान करके कंप्यूटर 'जो बोला सो छाप' सकेगा. यानी मैं जो बोलूं वैसा लिखा लेख कंप्यूटर फाइल में आ जाएगा. फिर अक्षरों की पहचान भी आवश्यक नहीं रहेगी. आज साक्षरता अभियान में अपने नाम का हस्ताक्षर करना साक्षरता का द्योतक समझा जाता है. कुछ ही वर्षों में हस्ताक्षर कंप्यूटर द्वारा 'स्कैन' हो सकेंगे जिसमें जालसाजी की गुंजाइश नहीं रहेगी. एक समय ऐसा आएगा जब विकास का चिह्न यह माना जाएगा कि व्यक्ति बोल कर 'लिखता' है और कंप्यूटर द्वारा

नमस भोजानी

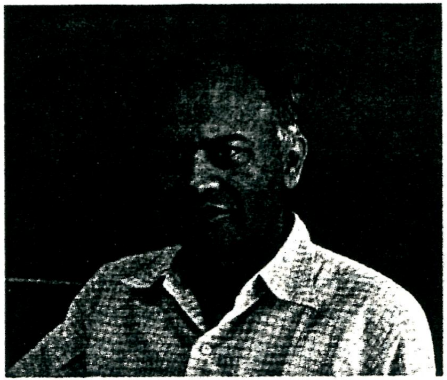

समाज, और विज्ञान व तकनीक के बीच पुल का काम करने वाले साहित्य का निर्माण जो भाषा करेगी वही टिक पाएगी और विकसित हो पाएगी.

हस्ताक्षर स्कैन करवाता है. और लोग कहेंगे कि अमुक व्यक्ति पिछड़ा है क्योंकि वह कलम से हस्ताक्षर करता है.

अब देखें पुस्तकों का क्या भविष्य है. कागज के पन्नों पर छपे ग्रंथों की जगह अब 'सीडी रॉम' आने लगे हैं. हजार पन्नों का ग्रंथ आप इस रूप में जेब में रख सकते हैं. तो 20 साल बाद (शायद उसके पहले ही) ग्रंथालयों में कागजी पुस्तकों की जगह सीडी रॉम या वैसे ही अधिक विकसित साधन आ जाएंगे. और पुस्तक की तरह सुलभता से हाथ में लेकर पढ़ सकने वाले पाठ्ययंत्र भी उपलब्ध हो जाएंगे. अगर आप महाभारत के दसवें पर्व के चौथे अध्याय के पांचवें श्लोक को पढ़ना चाहें तो इस यंत्र के बटन दबाकर परदे पर उसे लाएंगे... पन्ने पलटने की जरूरत नहीं. और यदि आप पढ़ना भी नहीं जानते तो ऐसा भी साधन इस्तेमाल कर सकते हैं जो सीडी रॉम पर लिखित लेख, कथा आदि को पढ़कर सुना सके.

यह भविष्य का चित्र किसी वैज्ञानिक गल्प जैसा भले ही प्रतीत हो पर भावी वास्तविकता का प्रतीक है. मैं आज अधिकांश अंग्रेजी लेखन सीधे टंकित करता हूं, पर यह लेख हाथ से लिख रहा हूं—क्योंकि अभी तक उपलब्ध देवनागरी लिखने वाले सॉफ्टवेयर उतनी सहजता से इस्तेमाल करने लायक नहीं हैं. पर मुझे इसमें शक नहीं है कि चंद सालों में वे भी सुधर कर इस्तेमाल करने में अधिक सुलभ होंगे.

तो हिंदी भाषा को ऐसे बदलते माहौल में लेखन-पठन-प्रकाशन के नए-नए साधनों से मिल-जुलकर, उनका फायदा उठाकर आगे बढ़ना है. ऐसी स्थिति में यदि हिंदी साहित्य भी समयानुरूप परिवर्तन पर्व से नहीं गुजरता है तो उसका विकास क्षीण होता जाएगा, क्योंकि साहित्य में सामाजिक परिवर्तनों के प्रतिबिंब उभरने चाहिए. साहित्य एक दर्पण है जिसमें समाज अपने रूप को निहारता है. साहित्य सामान्य दर्पण से वास्तव में कहीं अधिक होना चाहिए... इस हैसियत से कि उसमें समाज को निकट भविष्य की संभाव्य झांकियां दिखाई दें. विभिन्न भारतीय भाषाओं में संत साहित्य ने पहले ऐसी भूमिका निभाई थी. मानस भले ही गोस्वामी जी ने 'स्वांतः सुखाय' लिखा हो, उसने तत्कालीन माहौल में जनरंजन के साथ जनजागरण भी किया. कबीर ने अपने दोहों में भक्तिरस के साथ-साथ प्रबोधन भी किया था. महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर ने स्थानीय भाषा में गीता का उपदेश सुनाते-सुनाते समाज उत्थान के कार्य में हाथ बंटाया था.

आज की समाज प्रबोधन की जरूरत विज्ञान-तकनीक द्वारा नवनवीन आविष्कारों से समाज को अवगत कराने की है. सवाल उठाया जा सकता है कि क्या विज्ञान की सभी देनें मनुष्य के लिए कल्याणकारी साबित हुई हैं? इसका जवाब होगा—कदापि नहीं. क्या कुछ लाभदायी अनुसंधानों की कीमत पर्यावरण के ह्रास से चुकानी पड़ी है? बिलकुल सही. लेकिन क्या इस वजह से विज्ञान से नाता तोड़ कर घड़ी उलटी चलाई जाए? कदापि नहीं. हमें विज्ञान और तकनीक पर काबू पाकर उन्हें समाज कल्याण के मार्ग पर चलाना है. इस कार्य में साहित्य की भूमिका एक पुल की है, जो समाज एवं विज्ञान-तकनीक के दो छोरों को जोड़े. जो भाषा ऐसे साहित्य का निर्माण कर पाएगी वह टिकेगी और विकसित होती रहेगी. हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए कि हिंदी साहित्य इस परिवर्तनशील माहौल को ध्यान में रख कर विकास के इस मार्ग पर कदम रखे, आगे बढ़े.